International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 23-07-2023, Accepted: 08-08-2023, Published: 24-08-2023
Volume 9, Issue 4, 2023, Page No. 42-45

'सीमन्तनी उपदेश' में स्त्री अस्मिता और अस्तित्व

गुँजा आनंद
शोधार्थी, हिंदी विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विष्वविद्यालय वर्धा, महाराष्ट्र, भारत

सारांश
'सीमन्तनी उपदेश' कृति 'एक अज्ञात हिन्दू औरत' द्वारा रचित है। जिसका प्रकाशन सन् 1882 ई. में हुआ था। लगभग 106 वर्ष बाद इस पुस्तक की खोज कर डॉ. धर्मवीर ने अपने संपादन में सन् 1988 ई. में पुनः प्रकाशित किया। आज से लगभग 141 वर्ष पूर्व लेखिका ने नारियों की समस्या पर बहुत ही गंभीरता से सोचा था। यह पुस्तक भारत में स्त्री जागरण का एक महान ग्रंथ है। इसे पढ़ने के उपरांत पाठकगण को यह महसूस होगा कि भारत के संदर्भ में इस विषय पर इतनी पुरानी पुस्तक मिलना नारी अधिकार के लिए एक त्यौहार की सी बात है। सीमन्तनी उपदेश स्त्री–अस्मिता और अस्तित्व से जुड़े सवालों का क्रांतिकारी दस्तावेज कहा जा सकता है। इससे पहले इतना निर्भीक लेखन साहित्य में कहीं नहीं मिलता, जहां एक ओर अज्ञात लेखिका ने कटु शब्दों में तत्कालीन समाज की स्त्री का यथार्थ वर्णित किया है वहीं दूसरी ओर स्वयं को अज्ञात रखकर तत्कालीन सामाजिक परिवेश की स्त्रियों की स्थिति का भी चित्रांकन किया है। सीमन्तनी उपदेश में लेखिका ने समस्त स्त्री जाति को उसे अपनी स्थिति के प्रति जागरूक करने का प्रयास किया है। स्त्री अस्मिता व अस्तित्व जैसे प्रश्न पर लेखिका द्वारा उठाए गए स्त्री सरोकार हमारा खास रूप से ध्यान खींचते हैं। सीमन्तनी उपदेश में लेखिका ने विशेषकर विधवा स्त्री के जीवन की तकलीफों एवं पीड़ाओं का विवरण जिस रूप में प्रस्तुत किया है, उससे यह भली–भांति रूप से पता चलता है कि तत्कालीन समाज में स्त्री का विधवा होना एक अभिशाप के समान ही था। इस प्रकार इस पुस्तक में लेखिका ने स्त्री अस्मिता व अस्तित्व से जुड़े सभी सवालों को अपने विद्रोही स्वर में रेखांकित किया है। तत्कालीन समाज में स्त्री की अस्मिता और अस्तित्व को महत्व ही नहीं दिया जाता था। इस अज्ञात लेखिका ने स्त्री संबंधी सरोकारों का विवरण प्रस्तुत कर स्त्री संबंधी सभी सवालों को बड़ी ही गंभीरता से उकेरने का सक्षम प्रयास किया है।

मूल शब्दः स्त्री अस्मिता और अस्तित्व, भारत में स्त्री जागरण, तत्कालीन समाज

स्त्री–विमर्श को पश्चिमी विचारधारा के रूप में ख्याति प्राप्त है, और 'सिमोन द बोउआर' की पुस्तक 'द सेकंड सेक्स' जिसका प्रकाशन 1944 ई. में फ्रांसीसी भाषा में हुआ, उससे इसका आरंभ माना जाता है। यह पुस्तक 1953 ई.में अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित हुई और इसे 'नारी मुक्ति आंदोलन की बाइबिल' की संज्ञा दी गई। निश्चय ही यह कृति संसार की समस्त नारी को मुक्ति का रास्ता दिखाने की प्रेरणा देती है, किन्तु इससे पहले ही हिंदी साहित्य में नारी–चेतना से परिपूर्ण 'एक अज्ञात हिन्दू औरत' द्वारा रचित 'सीमन्तनी उपदेश' जैसी कृतियों का प्रकाशन हो चुका था। यह कृति 'द सेकेंड सेक्स' के 62 वर्ष पूर्व 1882 ई. में ही प्रकाशित हो चुकी थी। 'सीमन्तनी उपदेश' के बारे में डॉ. धर्मवीर ने कहा है कि – "सीमन्तनी उपदेश से पता चलता है कि यह पुस्तक पहली बार 1 फरवरी, 1882 को मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी ने लुधियाने से छापी थी। इस पुस्तक की लिपि देवनागरी है तथा यह गद्य और पद्य दोनों विधाओं में लिखी गई है।"[1] आगे वे लिखते हैं कि –"इस पुस्तक की लिपिकार स्वयं इसकी लेखिका नही हैं। मूल पुस्तक के अंत में लिखा गया है कि इसकी हस्तलिपि लुधियाने के किन्हीं ऋषिराम नाम के गौड़ ब्राह्मण ने तैयार की थी। शायद मूल पुस्तक फारसी लिपि में लिखी गई होगी।.... लिपि, वर्तनी और विराम चिन्ह् के संबंध से इस पुस्तक में अनेक कमियाँ देखी जा सकती है अतः इन तीनों बातों का संबंध लिपिकार ऋषिराम से है। लेखिका का संबंध वाक्य की रचना से है। इसे पढ़ने से पाठक यह अवश्य मानेंगे कि वाक्य रचना की दृष्टि से यह पुस्तक उन्नीसवीं शताब्दी की हिंदी की एक प्रौढ़ रचना है।"[2] स्पष्ट है कि पश्चिम में स्त्री विमर्श आरंभ होने के लगभग सवा सौ वर्ष पहले ही भारत में इसका आरंभ हो चुका था। इसके कई अन्य उदाहरण भी मिलते हैं, जिसमें सबसे अधिक चर्चा महादेवी वर्मा की 'श्रृंखला की कड़ियाँ' की होती है, जो 'द सेकंड सेक्स' के 2 वर्ष पूर्व ही 1942 ई. में प्रकाशित हो चुका था। इस तथ्य से भली–भांति यह प्रमाणित हो जाता है कि बिना किसी पश्चिमी प्रेरणा के नारी मुक्ति का उन्मुखीकरण 19वीं शताब्दी में भारत में हो चुका था तथा हिंदी साहित्य में आधुनिक स्त्री विमर्श की आवाज आज से लगभग सवा सौ वर्ष पहले ही बुलंद हो चुकी थी। क्योंकि दोनों ही पुस्तकें 'सीमन्तनी उपदेश' एवं 'श्रृंखला की कड़ियाँ' हिंदी भाषा में है, इस कारण इसका राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर न तो कोई चर्चा हुई और न ही इसके ऐतिहासिक महत्व को रेखांकित किया गया।

सीमन्तनी उपदेश की लेखिका का नाम अज्ञात है। लेखिका ने इस कृति के संदर्भ में अपना नाम प्रयुक्त क्यूँ नहीं किया इससे संबंधित कोई पुख्ता साक्ष्य प्राप्त नहीं होते हैं किंतु इस गुमनाम लेखिका के विषय में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यह एक हिन्दू औरत थी। यह लेखिका किसी धनी घर की बेटी रही हैं। यह बहुत पढ़ी–लिखी रही हैं। इन्होंने स्मृतियों और अन्य धर्मशास्त्रों का अध्ययन किया है, इन्हें तत्कालीन पंजाबी समाज का ज्ञान बहुत गहरा है, साथ ही उत्तर भारत में इनके अनुभव बहुत व्यापक और गहरे हैं। "पण्डिता रमाबाई ने अपनी पुस्तक 'द हाई–कास्ट हिन्दू वुमेन' (1887) में 'सीमन्तनी उपदेश' के एक अध्याय का अंग्रेजी में अनुवाद किया है, अज्ञात लेखिका के बारे में भी रमाबाई द्वारा कुछ साक्ष्य मिल जाते हैं–

1. सीमन्तनी उपदेश की लेखिका पढ़ी–लिखी महिला थीं और उन्होंने 'ब्रिटिश जनाना मिशनरी' की संस्था में शिक्षा पाई थी।
2. सीमन्तनी उपदेश की लेखिका मात्र विधवा नहीं थीं बल्कि 'बाल–विधवा' थीं, इससे उनका दुःख ज्यादा गहराया हुआ है।"[3]

'सीमन्तनी उपदेश' के लेखों से ज्ञात होता है कि अज्ञात हिंदू महिला न केवल सुशिक्षित थीं, अपितु स्त्री मुद्दों के साथ संजीदगी से जुड़े समाजसुधारकों के निरंतर साहचर्य में भी थीं।"[4] स्पष्ट है कि आधुनिक काल के आरम्भ से ही स्त्रियों ने अपनी समस्या पर बहुत ही गंभीरता से सोचना आरम्भ कर दिया था। 'सीमन्तनी उपदेश' पुस्तक से पता चलता है कि इसकी लेखिका ने अपने युग की नारियों के बारे में गहन और सम्पूर्ण अध्ययन किया है। इतना ही नहीं बल्कि एक बड़े उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए इन्होंने इसकी 300 प्रतियां छपवाकर पाठकों को मुफ्त में भी बाँटी थी। स्त्री जागरण की दिशा में यह एक महान कार्य था। भारतीय स्त्री चिंतनधारा की दृष्टि से यह पुस्तक स्त्री विमर्श के प्रस्थान बिंदु के रूप में भी जानी जा सकती है।

सीमन्तनी उपदेश स्त्री–अस्मिता और अस्तित्व से जुड़े सवालों का क्रांतिकारी दस्तावेज कहा जा सकता है। इससे पहले इतना निर्भीक लेखन साहित्य में कहीं नहीं मिलता जहां एक ओर अज्ञात लेखिका ने कटु शब्दों में तत्कालीन समाज में निहित पितृसत्तात्मकता को वर्णित किया है, वहीं दूसरी ओर स्वयं को अज्ञात रखकर तत्कालीन सामाजिक परिवेश की स्त्रियों की स्थिति का चित्रांकन भी किया है। रोहिणी अग्रवाल लिखती हैं कि– "यह पुस्तक न केवल अपने समय में प्रचलित सभी विवादास्पद और ज्वलंत स्त्री–सरोकारों को उठाती है, बल्कि अपने समय की जड़ताओं का सृजन करती कट्टरताओं से उतने ही बेबाक ढंग से गरियाती और लोहा लेती है। शायद इस किताब को अलक्षित कर देने का कारण भी यही रहा क्योंकि स्त्री की स्वतंत्रता को बाधित करने वाली सामाजिक संस्थाओं और धर्मशास्त्रों को सबसे पहले यहीं चुनौती मिली जो यथास्थितिवाद की चूलें हिला देने के लिए काफी थी।"[5]

मानव की मूल स्वतंत्रता की लड़ाई के लिए किसी व्यक्ति को इतना जान लेना पर्याप्त तो होता है कि वह गुलाम है, स्वयं को गुलामी की अवस्था में पाकर जो व्यक्ति उस गुलामी से निकलने के लिए छटपटाता है। किसी महान दृष्टि के लिए वही बात मुख्य है जो कि इस अज्ञात लेखिका के पास है, इसी बात का ध्यान कर लेखिका ने एक अध्याय पिंजरे और पक्षी की समानता को 'निवेदन' शीर्षक में दर्शाया है। लेखिका ने अपनी तमाम हिंदी बहनों को पिंजरे में पक्षियों के रूप में बंद देखा है, वह उन्हें केवल यह एहसास दिलाना चाहती हैं कि वे गुलाम हैं। इस संदर्भ में रोहिणी अग्रवाल ने भी लिखा है कि – "सीमन्तनी उपदेश की अज्ञात लेखिका तीखे, उजड्ड, गँवई मिजाज में स्त्रियों को चेताती हैं। चेताने की इस कोशिश में पुरुषसत्तात्मक व्यवस्था का शोषक रूप अनायास इस कदर बेनकाब हो जाता है कि घबराकर खुद ही अपनी नग्नता पर शर्मसार हो उठता है।"[6]

यह पुस्तक स्त्री के दर्द और विद्रोह का सुलगता हुआ दस्तावेज है। इस पुस्तक को स्त्रियों ने जब–जब पढ़ा, उसकी समझ और संवेदना का विस्तार हुआ। यह पुस्तक बरसों से घर की चार–दिवारी कैद स्त्री की आशाओं एवं आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करती है। यह कृति न सिर्फ पुत्री, बहन और पत्नी की स्त्री छवियों को उद्घाटित करती है वरन् स्त्री के स्वत्व की तलाश भी करती है। यह रचना स्त्री के भीतर की उसी शाश्वत व्यक्ति की खोज का हिस्सा है। "जिस समाज में स्त्रियों को शीलवती, पतिव्रता और धर्मपरायण बनाने की कोशिश की जा रही थी, उसी माहौल में एक अज्ञात लेखिका ने.....विधवा जीवन की त्रासदी को जिस प्रकार बयां किया है तथा उसके साथ ही सती प्रथा जैसे कलंक का विरोध किया है, वह प्रभावित करता है। धर्म के नाम पर स्त्री की गुलामी के लिए फैलाए गए जाल को तर्क की कसौटी पर रखकर छिन्न–भिन्न किया गया है। 'सीमन्तनी उपदेश' के प्रत्येक पन्ने से हिंदू स्त्री की गुलामी और पीड़ा की चीख सुनाई देती है, जिसका उद्देश्य आज़ादी की दूर–दूर तक गूंजनेवाली पुकार है।"[7]

सीमन्तनी उपदेश में लेखिका ने उद्बोधनात्मक रूप में उग्र एवं तिलमिला देने वाली शैली का प्रयोग कर समस्त स्त्री जाति को उसे अपनी स्थिति के प्रति जागरूक करने का प्रयास किया है। वह स्त्री–पुरुष दोनों के लिए समान प्रतिमान और आचार संहिता बनाना चाहती हैं। वह शास्त्रसम्मत मान्यता का उद्धरण देते हुए तर्क करती हैं कि यदि स्त्री–पुरुष दोनों की उत्पत्ति ब्रह्म से हुई है तो यह कैसा इंसाफ है कि– "आधा जिस्म मर्द का औरत के मरने से दूसरी शादी कर सके आधा जिस्म औरत का शादी बगैर जेलखाने में मार दिया जावे। जबकि मनुस्मृति में लिखा है– जब ब्रह्मा ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सबको पैदा कर लिया तब अपने बदन के दो भाग किए। एक से स्त्री, दूसरे से पुरुष बनाया।.....जब एक ही बदन से पैदायश है, दोनों के अधिकार बराबर होने चाहिए। न आधे को कुल मुख्तार, आधे को मजबूर किया जावे। बल्कि आधा–आधे की फरमाबरदारी करे।"[8]

स्त्री अस्मिता व अस्तित्व जैसे प्रश्न पर लेखिका द्वारा उठाए गए दो स्त्री सरोकार हमारा विशेष रूप से ध्यान खींचते हैं– पहला विवाह संस्था का पुनरीक्षण और दूसरा पति–पत्नी के रूप में स्त्री–पुरुष समानता की अवधारणा पर बल। लेखिका विवाह संस्था के मौजूदा दमनकारी स्वरूप से क्षुब्ध भर ही नहीं, बल्कि उसके खिलाफ अपनी पूर्ण आपत्ति दर्ज कराती हैं, साथ ही साथ उनके मन में पराधीनता की पीड़ा तथा आज़ादी की चाह कितनी गहरी थी, इस कथन द्वारा देखा जा सकता है – "शादी करने से अपने अखित्यारात दूसरे के अख्तियार में देने पड़ते हैं। जब आपने जिस्मी अखत्यार दूसरे को दिए तब दुनिया में अपनी क्या चीज बाकी रही? अगर इस दुनिया में कुछ खुशी है तो उन्हीं को है जो अपनी तई आजाद रहते हैं। हिंदुस्तानी औरतों को तो आजादी किसी हालत में नहीं हो सकती बाप, भाई, बेटा, रिश्तेदार–सभी हुकूमत रखते हैं। मगर जिस कद्र खाविंद जुल्म करता है उतना कोई नहीं करता। लौंडी तो यह सारी उम्र सब ही की रहती है पर शादी करने से तो बिल्कुल जरखरीद हो जाती है। इस दुनिया में चाहे कोई बादशाहत की नियामत मिले और आजादी ना हो तो नर्क के बराबर है।"[9]

इसी संदर्भ में लेखिका ने अपने लेखों में दो और तथ्यों की ओर हमारा ध्यान खींचा है जिसका उल्लेख करना यहाँ खासतौर से जरूरी है एक– "तमाम हिंदुस्तान में तलाश करने से शायद सौ पचास ही निकलेंगे जो स्त्रियों को भी इंसान जानते हैं।"[10] इस कथन से यह भली–भांति प्रतीत होता है कि तत्कालीन सामाजिक परिवेश में स्त्री का कोई अस्तित्व ही नहीं था वह अपने पिता–पति पर आश्रित रह अपना जीवन जकड़बंदियों में व्यतीत कर रही थी। समाज व परिवार में उसका न तो कोई स्थान था न ही उसको महत्व दिया जाता था। जो थोड़ा बहुत स्त्री को भी मनुष्य समझते थे, उसकी इच्छा खुशी का ध्यान रखते थे वैसे पुरुषों की संख्या बहुत ही सीमित थी।

दूसरा, वह भारतीय स्त्रियों को पराधीनता की बेड़ी तोड़ मुक्त होने का आह्वान करती हैं– "अब हमको खुद इस जेलखाने से निकलने की तदवीर करनी चाहिए.... बेशक, पहले हमारी हिंदी बहनों को बुरा मालूम होगा मगर जरा गौर को दिल में जगा देंगी तब खुद मालूम कर लेंगी कि हम पर किस कद्र मुसीबत है और हम पर कितना जुल्म किया जाता है। हम कैसे बेजान की माफिक सहारती हैं। हम कब से इस जेलखाने में बंद की गई हैं।"[11]

लेखिका समाज में पुरुषों का हित साधने के लिए महिलाओं को शिक्षा दिए जाने के तर्क से सहमत नहीं, वे इसे अस्वीकारती हैं। उन्हें स्त्री के लिए ऐसी शिक्षा चाहिए थी, जिससे वह अपना जीवन स्वयं संभाल सकें। स्त्री का किसी और पर आश्रित रहना उन्हें स्वीकार्य नहीं था। हालांकि वह पुरुषों का विरोध नहीं करती

हैं वह तो बस स्त्री प्रगति के लिए चिंतित हैं, इसके बिना स्त्री की अस्मिता और अस्तित्व खतरे के दायरे में है। इस संदर्भ में अपने एक कथन में वह कहती हैं– "अगर कहो कि हिंदुस्तानियों ने विद्या में बहुत तरक्की की है और इल्म हासिल किया है, बेशक माना फिर हमें क्या, एक के खाना खाने से दूसरे का पेट नहीं भरता है।"[12] यहाँ लेखिका ने सिर्फ पुरुष को ही सभी कार्यों में स्वतंत्रता दिए जाने को गलत बताया है उनकी नजर में स्त्री को भी पुरुष के समान प्रगति के सारे अवसर मिलने चाहिए क्योंकि स्त्रियों के प्रति पुरुष समाज का यही उपेक्षित भाव उसके पिछड़ेपन का प्रमुख कारण रहा है।

सीमन्तनी उपदेश में लेखिका ने विशेषकर विधवा स्त्री के जीवन की विडम्बनाओं एवं पीड़ाओं का विवरण जिस रूप में प्रस्तुत किया है, उससे यह भली–भांति रूप से पता चलता है कि तत्कालीन समाज में स्त्री का विधवा होना एक अभिशाप के समान ही था। सधवा स्त्री के रूप में उसे कई प्रकार की समस्याओं का तो सामना करना ही पड़ता था तो वहीं विधवा हो जाने पर उसे पग–पग पर घृणा, उपेक्षा, तिरस्कार और असंख्य प्रतिबंधों से जूझना पड़ता था। शारीरिक और मानसिक शोषण की पराकाष्ठा का शायद दूसरा नाम ही विधवा जीवन था। इस पुस्तक में लेखिका ने 'रांडो पर सितम' लेख में विधवा की तकलीफों को कुछ इस प्रकार जाहिर किया है – "हिंदुस्तान में जब किसी औरत का खाविंद मरता है उस बिचारी की बहुत बुरी दुर्दशा करते हैं।... सब कौमों से कायस्थों की कौम में बहुत सख्त दस्तूर है। जिस वक्त खाविंद का दम निकला इसे तो यमदूत लेने आते हैं। वह तो दुनिया के दुःख से छूटाते हैं पर यह दुनिया के दुःख में डाल मुर्ग नीम बिस्मिल की तरह तड़पाते हैं।.... इस तकलीफ से सती होने का अच्छा रिवाज था। तड़पा कर मारने से बहुत औरतें मर जाती हैं।"[13]

जब किसी औरत का पति मर जाता है तो उस औरत का कोई अस्तित्व ही नहीं रह जाता, क्यूँ? क्योंकि औरत को उसके पति की पहचान से ही जाना जाता है, पति ही उसका स्वामी होता है, पति ही की जिंदगी से उसकी जिंदगी का होना माना जाता है। इन सभी बातों का उल्लेख लेखिका द्वारा पुस्तक के इस अंश में मिलते हैं – "जब किसी औरत का खाविंद मर जाता है तो इस वक्त मां–बाप, सास–ससुर सब परमेश्वर से यही दुआ मांगते हैं कि किसी तरह यह लड़की मर जाए !... रिश्तेदार जो मातम पुरसी को आती हैं, कहती हैं– बस अब राम–राम किया करो। अब दुनिया से तुम्हें क्या काम है?"[14]

लेखिका ने जेवरों का भी वर्णन किया है। जेवरों के वर्णन के साथ उनका कहना है कि ऐसे जेवरों का उपयोग स्त्रियों को नहीं करना चाहिए, जिससे रात दिन उन्हें कष्ट और कई तरह की हानियाँ झेलनी पड़े बल्कि ऐसे जेवरों को धारण करें जिससे वे स्वयं को सुंदर एवं कष्टों से मुक्त पावे ना कि जानवरों की मानिंद ऊपर से नीचे तक जेवर लादे रहे जिससे स्वयं उन्हीं को नुकसान झेलना पड़ता है साथ ही जब किसी औरत का खाविंद मरता है और उसे यह कहकर जेवरों से जुदा किया जाता है कि यह सुहाग की निशानी के जेवर हैं और जब किसी स्त्री की शादी होती है और ऐसे जेवर धारण करने को बोला जाता है इसे सुहाग की निशानी के रूप में पहनाया जाता है जिससे दिन–रात उसे तकलीफ उठानी पड़ती है इस संदर्भ में लेखिका का कहना है– "बेवकूफ औरतें यह नहीं समझती कि जब तक शादी नहीं होती है तब तक लड़का किस के सगुन करने से जीता रहता है? जब औरत मर जाती है तो कौन इनके जीने का सगुन करता है? अगर इन्हीं में सुहाग है तो चाहिए औरत के साथ खाविंद भी मर जाए। गोया इनका जिलाना मरना इनकी औरतों के पाँव में है।"[15] इस प्रकार इस पुस्तक में लेखिका ने स्त्री अस्मिता व अस्तित्व से जुड़े सभी सवालों को अपने विद्रोही स्वर में रेखांकित किया है। तत्कालीन समाज में स्त्री की अस्मिता और अस्तित्व को महत्व ही नहीं दिया जाता था। इस अज्ञात लेखिका ने स्त्री संबंधी सरोकारों का विवरण प्रस्तुत कर स्त्री संबंधी समस्त प्रश्नों को बड़ी ही संजीदगी से उकेरने का सक्षम प्रयास किया है।

यह पुस्तक हिंदुस्तान की आज की नारियों के लिए उनकी आजादी के घोषणापत्र के समान है। यह पुस्तक नारी अस्मितामूलक विमर्श के प्रस्थान बिंदु के रूप में जानी जा सकती है। हमारे गांवों और शहरों में आज 141 वर्ष पुरानी होकर भी यह पुस्तक आधुनिक समाज पर ज्यों की त्यों लागू होती है। यह पुस्तक सन् 1882 ई. में लिखी गई परन्तु वर्तमान संदर्भों में यह आज भी उतनी ही प्रासंगिक है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि स्त्री अस्मिता पर विचारणीय समस्याएं अनेक हैं। अनुभव और अभिव्यक्ति, शक्ति और मुक्ति का नया आलेख तब तैयार हो सकेगा जब स्त्री आर्थिक, राजनैतिक और मानसिक रूप से आत्मनिर्भर बने एवं पुरुषों के समान ही उसके अधिकार समाज में फलित हो सकें। साथ ही हमें स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में प्रचलित नारी संबंधी परंपरागत अवधारणाओं पर आमूल बदलाव भी देखने को मिलते हैं। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान उद्वेलित आंदोलनों एवं महिला संगठनों ने भी नारी की सुप्त अस्मिता को अनुप्राणित करने में सहयोग दिए हैं।

वर्तमान संदर्भों की यदि चर्चा करें तो हम पाते हैं कि भारतीय संविधान में कई नारी पक्षीय कानूनों के तहत उसे पुरुष के समकक्षी घोषित कर दिया गया है जिसके परिणामस्वरूप देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षणिक क्षेत्रों एवं सरकारी व्यवसाय के क्षेत्रों में नारी के पदार्पण के माध्यम से उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व और अस्मिता की नई अर्थवत्ता कायम है। स्त्री के अस्तित्व की बात करें तो कन्या भ्रूणहत्या जैसे घृणित कार्यों के द्वारा स्त्री–समूह के अस्तित्व पर निरंतर प्रश्न चिन्ह लगता रहा है और इसकी जिम्मेदार स्त्रियों के प्रति दूषित मनोवृत्ति और दहेज–प्रथा जैसी कुरीतियां रही हैं। समाज के कुछ तथाकथित लोगों की मान्यता है कि माता–पिता की देखभाल की जिम्मेदारी प्रायः पुत्र के ही कंधों पर होती है अतः पुत्र की कामना लोगों में अधिक बलवती होती है, जबकि आजकल वास्तविकता कुछ और है। हमारे समाज में स्त्रियों को घर तक सीमित कर दिया जाता है। समाज को अपनी यह रूढ़िवादी मानसिकता बदलनी होगी अन्यथा पुरुषों को जन्म देने वाली जब माँ ही नहीं रहेगी तो पुरुषों का अस्तित्व भी कैसे बचेगा?

'सीमन्तनी उपदेश' में लेखिका ने 'हिंदी औरतों की हालत', 'उनके जेवर के शौक', 'पहले दर्जे से लेकर तीसरे दर्जे की औरतों की बातचीत', 'उनकी पोशाक', 'उनके खराब होने के सबब', 'बदमाश औरतों की हालत', 'विधवा की दूसरी शादी', 'एक औलाद की चाहत रखने वाली का हाल' आदि के साथ–साथ छोटे–बड़े कुल मिलाकर 29 मजमून अर्थात् विषयों की चर्चा की है।

यह पुस्तक आज भी भारतीय नारियों के लिए वरदान स्वरुप है क्योंकि इसमें वे समस्त विषय वर्णित हैं जो कहीं ना कहीं वर्तमानिक हिंदी भाषी औरतों की दशा का हूबहू वर्णन करते हैं तथा इसके साथ–साथ ही समस्त अधिकारों को भी उद्घाटित करते हैं। या यूँ कहें कि यह पुस्तक उस दौर की औरतों के साथ–साथ वर्तमानिक औरत के भी दर्द और विद्रोह का महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

संदर्भ सूची

1. एक अज्ञात हिन्दू औरत. संपादक– डॉ धर्मवीर. (2017). सीमन्तनी उपदेश. नयी दिल्लीः वाणी प्रकाशन. पृष्ठ– 18
2. वही, पृष्ठ– 3
3. वही, पृष्ठ– 9–10
4. अग्रवाल, रोहिणी. (7 मार्च 2018). स्त्री–चेतनाः अज्ञात हिंदू महिला. समालोचन.

(https://samalochan.blogspot.com/2018/03/blog-post_7.html?m=1)
5. वही
6. अग्रवाल, रोहिणी. प्रधान संपादक–मीरा गौतम. (2015). अंतिम दो दशकों का हिन्दी–साहित्य. नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ– 101
7. ज्योति. सम्पादक–द्वय : माणिक और जितेन्द्र यादव. (2022). स्त्री लेखन की परंपरा, स्त्री विमर्श से पहले. अपनी माटी, अप्रैल–जून, अंक–41 (https://www.apnimaati.com/2022/06/blog-post_86.html?m=1)
8. एक अज्ञात हिन्दू औरत. संपादक– डॉ धर्मवीर. (2017). सीमन्तनी उपदेश. नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ– 76
9. वही, पृष्ठ–84–85
10. वही, पृष्ठ–43
11. वही, पृष्ठ–45
12. वही, पृष्ठ–44
13. वही, पृष्ठ–89–90
14. वही, पृष्ठ–91–92
15. वही, पृष्ठ–52